गद्य-खण्ड

गद्य की विधाओं का विकास क्रम

मनुष्य को प्रकृति ने एक अद्‌भुत क्षमता प्रदान की है– अभिव्यक्ति की क्षमता। इसका उपयोग करते हुए वह अपने विचारों, भावों] अनुभूतियों आदि को दो प्रकार से व्यक्त करता है– पद्य में या गद्य में। गद्य और काव्य की विषय वस्तु, भाषा–शैली आदि में बहुत अंतर है। गद्य साहित्य की विषयवस्तु प्राय: हमारी बोध प्रवृत्ति पर आधारित है और काव्य की संवेदनशीलता पर। विषय अधिकांशत: वही होते हैं जिनके बारे में हम सोचते अधिक हैं। गद्य मस्तिष्क के तर्क–प्रधान चिंतन की उपज है। इसके मुख्य विषय हमारे दैनिक कार्यकलाप, ज्ञान–विज्ञान, कथा वर्णन, व्याख्या आदि हैं। वस्तुत: काव्य का संसार बहुत कुछ काल्पनिक है, किंतु गद्य का व्यावहारिक या यथार्थ।

गद्य को कवियों की कसौटी (गद्यं कवीनाम् निकषं वदन्ति) कहा गया है, फिर भी इसमें अपने विचारों एवं भावों को अभिव्यक्त करना अपेक्षाकृत सरल होता है। कोई भी व्यक्ति इसका प्रयोग काव्य की अपेक्षा अधिक सहजता–सरलता से कर सकता है, क्योंकि यह क्रमबद्ध ताल, लय, तुक आदि से मुक्त रहता है। गद्य का लक्ष्य है विचारों या भावों को सहज, सरल सामान्य भाषा में विशेष प्रयोजन सहित संप्रेषित करना। गद्य की भाषा व्यावहारिक होती है। वक्ता जो कुछ सोचता है, उसे तत्काल अनायास व्यक्त भी कर सकता है। आज महाकाव्यों का नहीं, उपन्यास का युग है। वर्तमान में, हमारा साहित्य अधिकांशत: गद्य में ही लिखा जा रहा है।

गद्य आधुनिक काल की सबसे महत्वपूर्ण विधा मानी जाती है। संसार के प्रत्येक साहित्य में पहले पद्य का विकास हुआ है और फिर गद्य का। हिन्दी साहित्य के विकास में भी प्रारंभिक रचनाएँ पद्य में हैं। गद्य का पूर्ण व परिमार्जित विकास बाद में हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में हिन्दी गद्य का सूत्रपात होता है। इस काल में खड़ी बोली गद्य की प्रतिष्ठा मुंशी सदासुखलाल, इंशाअल्ला खाँ, लल्लूजी लाल और सदल मिश्र ने की। गद्य का अर्थ होता है बोलना या कहना।

गद्य को संस्कृत साहित्य में श्रव्य काव्य का एक भेद माना गया है, जिसका अर्थ है–बोले जाने या उदाहरण किए जाने के योग्य। अर्थात् गद्य का सम्बन्ध बोलचाल से और किसी रूप में वक्तृता से है। संस्कृत साहित्य शास्त्र में कथा, आख्यायिका, आख्यान आदि के लिए ही गद्य का उपयोग बताया गया है। वास्तव में गद्य का सम्बन्ध वैचारिकता से है जिसका लक्ष्य सहज, सरल, सीधे और निश्चित, प्रयोजनयुक्त शब्दार्थ को प्रेषित करना है। गद्य शब्द रचना के बाह्य रूप एवं आंतरिक प्रवृत्ति दोनों का द्योतक है।

प्रारंभ में गद्य मुख्यत: बोध, व्याख्या तर्क वर्णन और कथा के क्षेत्र में सीमित रहा, किन्तु आज दो व्यक्तियों के बीच साधारण बातचीत से लेकर शास्त्र, इतिहास एवं विज्ञान के विविध विषयों की अभिव्यक्ति तक उसका विस्तार है। आज गद्य अनेक विधाओं में विद्यमान है। हिन्दी गद्य–साहित्य अत्यन्त समृद्ध है, इसकी प्रमुख विधाएँ निम्नानुसार हैं –

- नाटक
- उपन्यास
- निबंध
- एकांकी
- कहानी
- आलोचना

गद्य साहित्य की अन्य गौण विधाएँ हैं-

- जीवनी
- संस्मरण
- यात्रा-वृत्त
- रिपोर्ताज
- पत्र-साहित्य
- आत्मकथा
- रेखाचित्र
- लघुकथा
- साक्षात्कार
- गद्य काव्य

नाटक

नाटक दृश्य काव्य के अंतर्गत आता है। इसका प्रदर्शन रंगमंच पर होता है। भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने नाटक का लक्षण देते हुए लिखा है- ''नाटक शब्द का अर्थ है नट लोगों की क्रिया। दृश्य-काव्य की संज्ञा-रूपक है। रूपकों में नाटक ही सबसे मुख्य है इससे रूपक मात्र को नाटक कहते हैं।'' बाबू गुलाबराय के अनुसार- 'नाटक में जीवन की अनुकृति को शब्दगत संकेतों में संकुचित करके उसको सजीव पात्रों द्वारा एक चलते-फिरते सप्राण रूप में अंकित किया जाता है। .... नाटक में फैले हुए जीवन व्यापार को ऐसी व्यवस्था के साथ रखते हैं कि अधिक से अधिक प्रभाव उत्पन्न हो सके।' नाटक का प्रमुख उपादान है उसकी रंगमंचीयता।

हिन्दी साहित्य में नाटकों का विकास वास्तव में आधुनिक काल में भारतेन्दु युग में हुआ। भारतेन्दु युग से पूर्व भी कुछ नाटक पौराणिक, राजनैतिक, सामाजिक आदि विषयों को लेकर रचे गए। सत्रहवीं-अठारहवीं शताब्दी में रचे गए नाटकों में मुख्य हैं- हृदयरामकृत- हनुमन्नाटक, बनारसीदास-समयसार, गुरूगोविन्द सिंह, 'चंडी-चरित्र', यशवंत सिंह, 'प्रबोध-चन्द्रोदय' , नवाज 'शकुंतला नाटक', श्रीरघुराम- 'सभासार', कृष्णजीवन लक्ष्मीराम- 'करुणा भरण' आदि।

हिन्दी का प्रथम नाटक- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी के अनुसार- विश्वनाथ सिंह कृत- 'आनन्द रघुनन्दन', भारतेन्दु जी के मतानुसार गोपाल चन्द्र गिरिधरदास कृत- 'नहुष' को माना गया, परंतु वास्तव में ये काव्यात्मक संवाद मात्र हैं नाटक नहीं।

हिन्दी नाटकों का विकास क्रम-

हिन्दी नाटकों के विकास को हम निम्न चार भागों में बाँट सकते हैं-

1. भारतेन्दु-युगीन नाटक (1850 से 1900 ई.)
2. द्विवेदी-युगीन नाटक (1901 से 1920 ई.)
3. प्रसाद-युगीन नाटक (1921 से 1936 ई.)
4. प्रसादोत्तर-युगीन नाटक (1937 से आज तक)

भारतेन्दु-युगीन नाटक :-

हिन्दी नाटकों का आरम्भ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से ही होता है। भारतेन्दु हिन्दी साहित्य में आधुनिकता के प्रवर्तक साहित्यकार हैं। भारतेन्दु और उनके समकालीन लेखकों में देश की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक दुर्दशा के प्रति गहरी पीड़ा थी और इस पीड़ा के मूल में था देश-प्रेम। इसीलिए इनके साहित्य में समाज को जागृत करने का संकल्प है और नई विषय वस्तु के रूप में देश-प्रेम का भाव मुखर है। समाज को जाग्रत करने में नाटक की प्रमुख भूमिका है।

निराशा से आशा की ओर ले जाने का कार्य भारतेन्दु जी ने नाटकों के माध्यम से किया। भारतेन्दु ने काफी संख्या में मौलिक नाटक लिखे और बंगला तथा संस्कृत नाटकों का अनुवाद भी किया। भारतेन्दु के मौलिक नाटक हैं– 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' 'प्रेम योगिनी', 'विषस्य विषमौषधम्' इत्यादि। इन नाटकों में देश की दुर्दशा, विषमता, विसंगति के वर्णन के साथ ही सत्ता की विवेकहीनता के रूप की अभिव्यक्ति है। भारतेन्दु द्वारा मुख्य अनूदित नाटक हैं–'विद्या सुंदर', कर्पूर मंजरी, 'मुद्राराक्षस', 'पाखंड–विडम्बन' आदि।

भारतेन्दु युग के अन्य नाटककारों में लाला श्रीनिवासदास ने– 'रणधीर प्रेम मोहिनी','संयोगिता स्वयंवर',श्री प्रतापनारायण मिश्र–'भारत–दुर्दशा','कलिकौतुकरूपक' लिखे। मिश्र जी का नाटक 'भारत–दुर्दशा' प्रतीकात्मक है जिसमें भारत, कलियुग, आलस्य आदि पात्र हैं। राधाचरण गोस्वामी का 'बूढ़े मुँह मुहासे', बालकृष्ण भट्ट का– 'जैसा काम वैसा परिणाम' इत्यादि महत्वपूर्ण कृतियाँ है।

भारतेन्दु काल में रचित नाटकों में विविध विषय एवं प्रवृत्ति भेद के नाटक रचे गए जिनमें प्रमुख धाराएँ हैं– पौराणिक, ऐतिहासिक, समस्याप्रधान, प्रेमप्रधान, राष्ट्रीय प्रहसन और प्रतीकवादी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतेन्दु युग में नाटक विधा का पुनर्प्रचलन अपने समूचे युग की अभिव्यक्ति के साथ हुआ, जैसे मौलिक नाटकों के साथ अनूदित नाटकों ने समृद्ध किया।

द्विवेदी-युगीन नाटक :-

पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी का खड़ी बोली गद्य के विकास में अमूल्य योगदान है। इस काल में विभिन्न भाषाओं के नाटकों का अनुवाद बड़े पैमाने पर हुआ। बंगला, अंग्रेजी, संस्कृत नाटकों के हिन्दी अनुवाद का प्रकाशन हुआ।

मौलिक नाटककारों में किशोरीलाल गोस्वामी, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', शिवनंदन सहाय, रायदेवी प्रसाद पूर्ण के नाम उल्लेखनीय हैं। किशोरीलाल जी का 'चौपट चपेट', 'हरिऔध' जी का 'कविमणी परिणय' आदि महत्वपूर्ण नाटक हैं।

अनूदित नाटकों में उल्लेखनीय है– शेक्सपीयर के 'रोमियो जुलियट','मैकबेथ' और 'हैमलेट'। संस्कृत के नाटक– 'मृच्छकटिकम्', 'उत्तर रामचरित', 'मालती–माधव', आदि का हिन्दी अनुवाद लाला सीताराम बी.ए. ने किया।

प्रसाद-युगीन नाटक :-

नाट्य–रचना में व्याप्त गतिरोध को समाप्त करने वाले व्यक्तित्व के रूप में जयशंकर प्रसाद जी का आगमन हुआ। डॉ. गुलाबराय के अनुसार–''प्रसाद जी ने हिन्दी नाटकों में मौलिक क्रान्ति की। .... वर्तमान जगत के संघर्ष और कोलाहलमय जीवन से ऊबा हुआ उनका हृदयस्थ कवि उनकी स्वर्णिम आभा से दीप्त दूरस्थ अतीत की ओर ले गया।'' प्रसाद के नाटकों में सांस्कृतिक चेतना का विकासमान रूप देखने को मिलता है। इसमें इतिहास और कल्पना के संगम से वर्तमान को नई दिशा देने का प्रयास ही महत्वपूर्ण है।

वास्तव में इस काल में ऐतिहासिक नाटकों की धूम रही। जयशंकर प्रसाद के अतिरिक्त हरिकृष्ण प्रेमी, गोविन्द वल्लभ पंत, सेठ गोविन्ददास आदि ने ऐतिहासिक नाटक लिखे। पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने 'महात्मा ईसा' नामक नाटक लिखा। सामाजिक समस्याओं पर लक्ष्मीनारायण मिश्र, उपेन्द्रनाथ अश्क तथा भुवनेश्वर आदि ने नाटक लिखे। प्रसाद जी के नाटकों का क्षेत्र प्राचीन काल है, किंतु उनके नाटकों में अपने समय का पूरा प्रभाव है। राष्ट्रीयता, अतीत गौरव एवं विश्व बंधुत्व की भावना से प्रसाद जी के नाटक परिपूर्ण हैं। प्रसाद जी के प्रमुख नाटक हैं– 'चन्द्रगुप्त', 'स्कन्दगुप्त', 'ध्रुवस्वामिनी'।

इन नाटकों में राजनीतिक चालों, अन्तर्द्वन्द्व, स्त्री-शोषण के विरुद्ध मुखर स्वर की अभिव्यक्ति हुई है।

श्री हरिकृष्ण प्रेमी का 'शिवसाधना', 'रक्षाबन्धन', सेठ गोविन्ददास का 'कर्तव्य', गोविन्द वल्लभ पंत का 'राजमुकुट' (पन्ना के अपूर्व त्याग की गाथा) उदयशंकर भट्ट का 'राधा' 'विश्वमित्र' एवं 'मत्स्यगंधा' आदि मुख्य नाटक हैं।

हिन्दी नाटकों को एक नया मोड़ लक्ष्मीनारायण मिश्र ने 'मुक्ति का रहस्य' और 'सिंदूर की होली' नामक समस्या प्रधान नाटक लिखकर दिया। प्रसाद-युग नाटकों की दृष्टि से समृद्ध काल है।

प्रसादोत्तर-युगीन नाटक :-

प्रसादोत्तर-युगीन नाटकों में यथार्थ का स्वर प्रमुख है। स्वाधीनता प्राप्ति का लक्ष्य पुनरुत्थान एवं पुनर्जागरण के रूप में नाटकों में व्यक्त हुआ। आदर्शवादी प्रवृत्तियाँ प्रसादोत्तर काल के नाटकों में आस्था, मर्यादा एवं गौरव के उच्चादर्शों के साथ व्यक्त हुई। हिन्दी नाटक रंगमंच और जीवन के यथार्थ का संगम इस काल को नयी दिशा की ओर उन्मुख करता है। प्रसाद-युगीन नाटकों में रोमांटिक भावबोध, सांस्कृतिक चेतना, समसामयिक जीवनादर्शों के मध्य एक खामी के रूप में था। प्रसादोत्तर युगीन नाटकों में उपेन्द्रनाथ 'अश्क' पहले नाटककार हैं जिन्होंने हिन्दी नाटक को रोमांटिक भावबोध से बाहर निकालकर आधुनिक भावबोध से जोड़ा।

स्वाधीन भारत के नाटक साहित्य में पहला उल्लेखनीय नाम है- जगदीशचन्द्र माथुर का जिन्होंने 'कोणार्क' 'शारदीया' आदि नाटक लिखे। ये नाटक विषयवस्तु की दृष्टि से तो महत्वपूर्ण हैं किंतु अभिनेयता और रंगमंचीयता की दृष्टि से नहीं। 'अश्क' जी के प्रमुख नाटक हैं- 'जय-पराजय', 'स्वर्ग की झलक', 'अंजो दीदी' आदि।

गीति नाटकों की परंपरा इसी युग की मुख्य देन है जिसमें प्रमुख है धर्मवीर भारती का 'अंधायुग' (1953) यह स्वातन्त्रोत्तर भारत की महत्वपूर्ण कृति है। अभिनेयता की दृष्टि से भी यह सफल गीतिनाट्य है। इसी कड़ी में दूसरी महत्वपूर्ण कृति है- दुष्यन्त कुमार का 'एक कंठ विषपायी' (1963)।

स्वाधीन भारत के सफलतम नाटककार हैं-मोहन राकेश। उन्होंने ऐतिहासिक कथानक पर आधारित अपनी नाट्य कृतियों में समकालीन बोध को कुशलतापूर्वक व्यक्त किया है। 'आषाढ़ का एक दिन' कालिदास पर आधारित है। 'आधे-अधूरे' में स्वातन्त्र्योत्तर भारत के टूटते हुए पारिवारिक मूल्यों को सशक्त अभिव्यक्ति दी है। तीसरा नाटक है 'लहरों के राजहंस।'

लक्ष्मीनारायण लाल ने अभावग्रस्त गाँव जीवन की झलक को 'अंधा कुआँ' में प्रस्तुत किया है। 'मादा कैक्टस', 'रक्तकमल', 'तोता-मैना' प्रतीकात्मक नाटक हैं। रंगमंच एवं अभिनेयता की दृष्टि से ये सफल नाटक हैं।

अन्य नाटककारों में उल्लेखनीय नाम है- सुरेन्द्र वर्मा, जिनकी रचना है- 'द्रोपदी', 'आठवाँ सर्ग'।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, लक्ष्मीकांत वर्मा, मुद्राराक्षस आदि ने भी नाटक लिखे। भीष्म साहनी की 'हानूश','कबिरा खड़ा बाजार में' और 'माधवी' प्रसिद्ध नाट्य कृतियाँ हैं।

नाटक-विधा वस्तुनिष्ठता की माँग करती है, क्योंकि नाटक, लेखन तक ही सीमित नहीं है अपितु अभिनेता एवं रंगमंच के माध्यम से दर्शकों के साथ तादात्म्य स्थापित करना भी है। इसलिए यह एक चुनौतीपूर्ण कार्य है।

एकांकी

एकांकी गद्य की लोकप्रिय विधा है। एकांकी एक अंक का नाटक होता है। आज के व्यस्त जीवन में मानव कम से कम समय में मनोरंजन चाहता है। अत: साहित्य ऐसी विधा की कामना करता है जो अपने लघु कलेवर द्वारा मानव की ज्ञान पिपासा और मनोरंजन की भूख को शांत कर सके। एकांकी इस लक्ष्य की पूर्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन है। हिन्दी में एकांकी विधा का सूत्रपात भारतेन्दु युग से माना जाता है, यद्यपि जयशंकर प्रसाद के 'एक घूँट' को हिन्दी का प्रथम एकांकी होने का गौरव प्राप्त है, किंतु आधुनिक एकांकी का जनक डॉ. रामकुमार वर्मा को माना जाता है।

एकांकी न तो नाटक का संक्षिप्त रूप है न वह नाटक का एक अंक है। यह स्वयं में पूर्ण रचना है। डॉ. रामकुमार वर्मा के अनुसार – ''एकांकी में एक ही घटना होती है, वह नाटकीय कौशल से कौतूहल का संचार करते हुए चरम सीमा तक पहुँचती है। उसमें कोई गौण प्रसंग नहीं रहता है। पात्र सीमित होते हैं। कथा–वस्तु भी स्पष्ट और कौतूहल से युक्त रहती है; इसमें विस्तार के लिए अवकाश नहीं होता।''

प्रसाद के बाद एकांकी के क्षेत्र में डॉ. रामकुमार वर्मा का पदार्पण हुआ। 'बादल की मृत्यु' नामक एकांकी 'एक घूँट' नामक एकांकी के समकक्ष माना जाता है। कतिपय विद्वान सन् 1935 में प्रकाशित भुवनेश्वर प्रसाद के 'कारवाँ' नामक एकांकी को प्रथम एकांकी की श्रेणी में रखते हैं। विगत अनेक सालों से हिन्दी का एकांकी कलेवर अपने युग के अनुरूप परिवर्तित होता रहा है। साठ–पैसठ वर्षों में एकांकीकारों ने पारिवारिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक, धार्मिक तथा व्यक्तिगत समस्याओं को यथार्थ के धरातल पर अंकित किया है। रेडियो रूपक के रूप में भी एकांकी को नवीन दिशा प्राप्त हुई है।

एकांकी उद्‌भव और विकास :-

हिन्दी एकांकी का मूल स्रोत है संस्कृत नाटकों में एक अंक वाले व्यायोग, प्रहसन, वीथी, गोष्ठी, नाटिका आदि। वर्तमान हिन्दी एकांकी के स्वरूप में विद्वानों का मत है कि इस पर पाश्चात्य परंपरा का प्रभाव विद्यमान है यद्यपि प्राचीन भारत में एकांकी जैसी रचनाओं की विकसित परंपरा विद्यमान थी अर्थात् एकांकी की आत्मा भारतीय है और कलेवर पाश्चात्य। आधुनिक एकांकी संस्कृत और पाश्चात्य एकांकी के मध्य दोनों के न्यूनाधिक प्रभाव से युक्त है।

हिन्दी एकांकी का विकास क्रम -

1. भारतेन्दु–द्विवेदी युग (1875 से 1928)
2. प्रसाद युग (1929 से 1937)
3. प्रसादोत्तर युग (1938 से 1947)
4. स्वातन्त्र्योत्तर युग (1948 से अब तक)

भारतेन्दु-द्विवेदी युग :

भारतेन्दु युग एकांकी के विकास की प्रारम्भिक अवस्था का द्योतक है। भारतेन्दु प्रणीत 'प्रेमयोगिनी' (1875) से हिन्दी एकांकी का प्रारंभ माना जा सकता है। इस युग के एकांकीकारों ने समाज में प्रचलित प्राचीन परम्पराओं, कुप्रथाओं पर सामाजिक समस्या प्रधान एकांकी लिखे। जिसमें सामाजिक कुरीतियों पर हास्य–व्यंग्यपूर्ण प्रहार है साथ ही सामाजिक नवनिर्माण के लिए समाज को प्रेरित एवं जाग्रत करने का मंत्र भी। इस काल की कुछ महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं– भारतेन्दु कृत 'भारत जननी', राधाचरण गोस्वामी कृत 'भारत माता', 'अमर सिंह राठौर' राधाकृष्ण दास कृत 'महारानी पद्मावती'।

प्रसाद युग :-

जयशंकर प्रसाद के एकांकी 'एक घूँट' से एकांकी का आरंभ माना जाता है। भारतेन्दु ने यदि आधुनिक एकांकी की नींव डाली तो उसे पल्लवित पुष्पित करने का कार्य प्रसाद जी ने किया। इस युग में एकांकीकारों ने पाश्चात्य अनुकरण पर नवीन शैली में एकांकी लिखी। पाश्चात्य नाट्य सिद्धांतों की प्रेरणा एवं प्रभाव के बावजूद एकांकी भारतीय मानव जीवन के अधिक निकट है।

इस युग के एकांकी में रंगमंचीयता, संवादों में सजीवता, संक्षिप्तता एवं मार्मिकता देखने को मिलती है। तत्कालीन समाज की विकृतियों का चित्रण करने वाली एकांकियों की रचना हुई। प्रमुख कृतियाँ हैं- हरिकृष्ण शर्मा का- 'बुढ़ऊ का ब्याह', जी.पी.श्रीवास्तव का- 'गड़बड़झाला' सेठ गोविन्ददास का-'सूखे संतरे','हंगर-स्ट्राइक' आदि।

प्रसादोत्तर युगः-

इस काल में एकांकी का यथार्थ वादी रूप उभरकर सामने आया। युद्ध की विभीषिका, बंगाल का अकाल आजादी की जंग ने चिंतन और कला को प्रभावित किया। एकांकी भी अछूता न थी। शिल्प विधान के आडम्बर से बाहर निकलकर एकांकी में संकलन त्रय अनिवार्य होता गया। प्रमुख एकांकी एवं एकांकीकार हैं- डॉ. रामकुमार वर्मा -'दस मिनट','स्वर्ग का तारा'; उपेन्द्रनाथ 'अश्क' का- 'चरवाहे','सूखी डाली'; भुवनेश्वर का-'विडम्बना','स्ट्राइक'; जगदीश चन्द्र माथुर का- 'भोर का तारा','खंडहर'; हरिकृष्ण प्रेमी का-'निष्ठुर न्याय' इत्यादि।

स्वातन्त्र्योत्तर युग :-

इस युग के एकांकी पर रेडियो का गहरा प्रभाव है। इस युग के एकांकीकारों का दृष्टिकोण बुद्धिवादी प्रगतिशील तत्वों से प्रभावित रहा। इनकी रचनाओं में पूंजीवाद विरोध, वर्ग-संघर्ष, सड़ी-गली रूढ़ियों के प्रति अनास्था कृषक एवं मजूदर की दयनीय स्थिति के प्रति असंतोष और सुधारवादी दृष्टिकोण मिलता है। प्रमुख एकांकी एवं एकांकीकार- विष्णु प्रभाकर- बन्धन मुक्त, वापसी, हब्बा के बाद; प्रेमनारायण टंडन- अजातशत्रु; उपेन्द्रनाथ अश्क- अधिकार का रक्षक, सूखी डाली, पापी; डॉ. रामकुमार वर्मा- रेशमी टाई, पृथ्वीराज की आँखें, दीपदान, चारुमित्रा; उदयशंकर भट्ट- नये मेहमान, नकली और असली; सेठ गोविन्ददास- केरल का सुदामा; भगवतीचरण वर्मा- सबसे बड़ा आदमी, दो कलाकार; भुवनेश्वर प्रसाद- ऊसर, कारवाँ; जगदीशचन्द्र माथुर-रीढ़ की हड्डी, भोर का तारा; अन्य एकांकीकार- लक्ष्मीनारायण मिश्र, वृन्दवनलाल वर्मा, विनोद रस्तोगी, गिरिजा कुमार माथुर, धर्मवीर भारती, लक्ष्मीनारायण लाल, हरिकृष्ण प्रेमी आदि।

नाटक और एकांकी में अंतर :-

दोनों दृश्य काव्य हैं, दोनों में अभिनेयता भी है फिर भी दोनों की संरचना प्रक्रिया में मौलिक अंतर है-

नाटक	एकांकी
1. नाटक में अनेक अंक हो सकते हैं।	1. एकांकी में एक अंक होता है।
2. नाटक में आधिकारिक के साथ सहायक और गौण कथाएँ भी होती हैं।	2. एकांकी में एक ही कथा घटना रहती है।
3. नाटक में चरित्र का क्रमशः विकास दिखाया जाता है।	3. एकांकी में पात्रों के क्रियाकलापों और चरित्रों का संयोजन इस रूप में होता है कि एकांकी होते हुए भी उनके व्यक्तित्व का समूचा बिम्ब मिल जाए।

4. कथानक की विकास प्रक्रिया धीमी रहती है।	4. कथानक आरंभ से ही चरम लक्ष्य की ओर द्रुत गति से बढ़ता है।
5. नाटक के कथानक में फैलाव और विस्तार रहता है।	5. एकांकी के कथानक में घनत्व रहता है।

उपन्यास

उपन्यास शब्द 'उप' उपसर्ग और 'न्यास' पद के योग से बना है। जिसका अर्थ है उप= समीप, न्यास= रखना स्थापित रखना (निकट रखी हुई वस्तु)। अर्थात् वह वस्तु या कृति जिसको पढ़कर पाठक को ऐसा लगे कि यह उसी की है, उसी के जीवन की कथा, उसी की भाषा में कही गई है। उपन्यास मानव जीवन की काल्पनिक कथा है। प्रेमचन्द के अनुसार 'मैं उपन्यास को मानव जीवन का चित्रमात्र समझता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है।'

उपन्यास का उद्भव और विकास :-

हिन्दी उपन्यास का प्रारंभ भी 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से ही होता है। उपन्यास की परंपरा भारत में संस्कृत से ही चली आ रही है। आचार्य भरत ने 'किसी अर्थ को युक्तियुक्त रूप से उपस्थित करना उपन्यास कहलाता है' कहकर संभाव्यता, विश्वसनीयता और रोचकता के समावेश को उपन्यास में अनिवार्य बताते हुए उसे परिभाषित किया। 'कादम्बरी' उपन्यास की व्याख्या के करीब है। बंगला में 'उपन्यास' शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में हुआ। गुजराती में इसे 'नवलकथा' नाम दिया तो अंग्रेजी में 'नॉवेल' शब्द से अभिहित किया गया।

हिन्दी उपन्यास का विकास क्रम :-

1. भारतेन्दु युग (1975 से 1900)
2. द्विवेदी युग (1900 से 1918)
3. प्रेमचन्द युग (1919 से 1936)
4. प्रेमचन्दोत्तर युग (1937 से अब तक)

भारतेन्दु युग :-

हिन्दी के भारतेन्दु युगीन मौलिक उपन्यासों पर संस्कृत के कथा साहित्य एवं परवर्ती नाटक साहित्य के साथ ही बंगला उपन्यासों की छाया पाई जाती है। इस दृष्टिकोण से हिन्दी का प्रथम उपन्यास 'परीक्षा गुरु' (1882) माना जाता है। इसी क्रम में श्रद्धाराम फुल्लौरी का– 'भाग्यवती', देवकीनंदन खत्री का– 'चन्द्रकान्ता सन्तति' इत्यादि उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। भारतेन्दु युग में सामाजिक, ऐतिहासिक, तिलिस्मी, ऐय्यारी, जासूसी तथा रोमानी उपन्यासों की रचना परंपरा का सूत्रपात हुआ। इस युग की प्रमुख अनूदित कृति है बंकिमचन्द्र की 'दुर्गेशनंन्दिनी'।

द्विवेदी युग :-

द्विवेदी युग में खड़ी बोली ने तो अपने रूप को निखारा, परिमार्जित रूप ग्रहण किया, काव्य में नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा की, किंतु उपन्यास क्षेत्र में कुतूहल, रहस्य और रोमांच एवं मनोरंजन की ही प्रमुखता रही। इस युग में अंग्रेजी और बंगला के बहुत से उपन्यास अनूदित हुए।

प्रमुख रचनाएँ :- देवकीनंदन खत्री का- 'काजर की कोठरी','अनूठी बेगम','भूतनाथ'। किशोरीलाल गोस्वामी का- 'लीलावती' व 'आदर्श सती' इत्यादि।

प्रेमचन्द्र युग :-

उपन्यास लेखन क्षेत्र में प्रेमचन्द के अमूल्य योगदान के कारण इस युग को प्रेमचन्द युग की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। उपन्यास रचना की दृष्टि से यह अत्यन्त समृद्ध काल है। विषयगत विविधता, रूपगत विविधता एवं औपन्यासिक ढाँचे का सुगठित एवं प्रौढ़ रूप इस काल में देखने को मिलता है। सामाजिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की रचना हुई।

हिन्दी उपन्यास को प्रेमचन्द की देन बहुमुखी है। इस युग में प्राय: मध्यवर्ग उपन्यास के केन्द्र में रहा। किंतु प्रेमचंद ने टूटते सामन्ती समाज और पूंजीवादी व्यवस्था दोनों की विकृतियों को तो अपनी रचनाओं के माध्यम से व्यक्त किया ही नारी की समस्या को भी मुखर अभिव्यक्ति दी। आदर्श और यथार्थ का समन्वय प्रस्तुत किया।

इस युग के प्रमुख उपन्यास एवं उपन्यासकार हैं- प्रेमचन्द्र का- सेवासदन, कर्मभूमि, रंगभूमि, गोदान; आचार्य चतुर सेन शास्त्री का- अमर अभिलाषा; जयशंकर प्रसाद का- कंकाल, वृन्दावनलाल वर्मा का- गढ़कुड़ार, विराटा की पद्मिनी आदि।

प्रेमचन्देत्तर युग :-

प्रेमचन्दोत्तर युग में अनेक प्रवृत्तियाँ एवं प्रभाव उपन्यास के क्षेत्र में परिलक्षित हुए। यह काल पर्याप्त प्रौढ़ एवं विकसित काल है। इस काल खण्ड की महत्वपूर्ण घटनाएँ जिन्होंने उपन्यास एवं अन्य विधाओं को प्रभावित किया- उसमें प्रमुख रूप से द्वितीय विश्वयुद्ध, भारत की स्वतंत्रता एवं गांधी की हत्या रहा आदर्शवाद का टूटना, आर्थिक सामाजिक विषमता, टूटते परिवार, क्षीण होते नैतिक मूल्य, व्यक्ति का आत्मकेन्द्रित रूप इस काल की औपन्यासिक कृतियों के विषय रहे।

प्रमुख उपन्यास एवं उपन्यासकार हैं- जैनेन्द्र का- त्यागपत्र; सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय का- शेखर एक जीवनी; नरेश मेहता का- डूबते मस्तूल; उपेन्द्रनाथ 'अश्क' का- गिरती दीवारें; अमृतलाल नागर का- मानस का हंस, बूंद और समुद्र; नागार्जुन का- बाबा वटेसरनाथ। राघेंय राघव का- कब तक पुकारूँ; हजारी प्रसाद द्विवेदी का- बाण भट्ट की आत्मकथा; यशपाल का- झूठा-सच, देशद्रोही, दिव्या। फणीश्वर नाथ रेणु का- मैला आँचल इत्यादि।

प्रेमचन्द्रोत्तर काल के उपन्यास में विषयगत विविधता के साथ-साथ जीवन की जटिलताओं की अभिव्यंजना नवीन शिल्प लेकर आई। इस कालखण्ड में महिलाओं की भी सक्रिय एवं महत्वपूर्ण उपस्थिति दर्ज हुई- मन्नू भण्डारी- आपका बंटी, महाभोज; प्रभा खेतान- पीली आंधी; महाश्वेता देवी- अग्निगर्भा आदि। उपन्यास सृजन की यह परंपरा सतत् है।

कहानी

कहानी मानव-जीवन का वह खण्ड चित्र है जिसकी कोई सीमा रेखा नहीं और जिसमें किसी एक ही पक्ष की अनिवार्यता नहीं, गुरु रवीन्द्रनाथ टैगोर के अनुसार - ''नदी जैसे जलस्रोत की धारा है, मनुष्य वैसे ही कहानी का प्रवाह है।'' बाबू गुलाबराय के अनुसार कहानी- ''एक स्वत: पूर्ण रचना है जिसमें एक तथ्य या प्रभाव को अग्रसर करने वाली

व्यक्ति केन्द्रित घटना या घटनाओं के आवश्यक उत्थान-पतन और मोड़ के साथ पात्रों के चरित्र पर प्रकाश डालने वाला कौतूहलपूर्ण वर्णन होता है।'' समग्रत: संक्षेप में ''कहानी वह कथात्मक लघु गद्य रचना है जिसमें जीवन की किसी एक स्थिति का सरस सजीव चित्रण होता है।''

उद्‌भव और विकास :-

हिन्दी कहानी का मौखिक स्वरूप अनादिकाल से रहा है, परन्तु इसका लिखित स्वरूप हमें 19वीं शताब्दी के अंतिम चरण से देखने को मिलता है। सन् 1900 में 'सरस्वती' में प्रकाशित 'इन्दुमती' (किशोरीलाल गोस्वामी) नामक कहानी को हिन्दी की प्रथम कहानी माना जाता है। कतिपय विद्वान इंशा अल्ला खाँ द्वारा रचित 'रानी केतकी की कहानी' को हिन्दी की प्रथम कहानी मानते हैं। इसके अतिरिक्त 'ग्यारह वर्ष का समय' (आचार्य रामचन्द्र शुक्ल), दुलाईवाली (बंग महिला) को भी हिन्दी की प्रथम कहानी के रूप में देखा जाता है। किंतु रूप विवेचना के आधार पर 'इन्दुमती' को ही हिन्दी की प्रथम कहानी माना गया है। विकास क्रम की दृष्टि से हिन्दी कहानी को निम्न रूपों में बाँटा जा सकता है।

1. भारतेन्दु एवं द्विवेदी युग (1880 से 1917)
2. प्रेमचन्द युग (1918 से 1937)
3. प्रेमचन्दोत्तर युग (1938 से अब तक)

भारतेन्दु एवं द्विवेदी युग :-

भारतेन्दु युग से ही हिन्दी कहानी का आरम्भ हुआ। किंतु इस काल की कहानियों में कलात्मकता का अभाव है। भारतेन्दु एवं बालकृष्ण भट्ट की स्वप्न कथाएँ प्रकाशित हुईं जो वास्तव में कथात्मक निबंध हैं। 'सरस्वती' के प्रकाशन के पूर्व आधुनिक कलात्मक हिन्दी कहानियों का अस्तित्व सामने नहीं था।

द्विवेदी युग में ही हिन्दी कहानी का वास्तविक आरम्भ हुआ। जिसमें 'सरस्वती' पत्रिका की महत्वपूर्ण भूमिका है। सरस्वती में प्रकाशित होने वाली कहानियों की शृंखला में 1915 में प्रकाशित 'उसने कहा था' (चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी') महत्वपूर्ण कहानी है। विषय वस्तु एवं शिल्प रचना की दृष्टि से हिन्दी कहानी का प्रारंभ इसी कहानी से माना जाता है। यह त्यागमय प्रेम का आदर्श प्रतिष्ठापित करने वाली श्रेष्ठ कहानी है।

द्विवेदी युग विषयगत वैविध्य एवं कहानी की भाषा एवं रूप के विकास का युग है। इस कालखण्ड में ऐतिहासिक, सामाजिक आधार पर कथा रचना हुई। विभिन्न भाषाओं एवं विशेष रूप से बंगला भाषा से अनुवाद कार्य भी हुआ।

प्रमुख कहानियाँ एवं कथाकार हैं- प्रेमचन्द- पंच-परमेश्वर, सौत। जयशंकर प्रसाद- छाया। श्री चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी'- उसने कहा था।

प्रेमचन्द युग :-

कहानी की पूर्ण प्रतिष्ठा में प्रेमचन्द एवं उनकी कहानियों का सार्थक योगदान है। यथार्थ और आदर्श का संगम, सरल, सहज एवं बोलचाल की मुहावरे वाली भाषा ने कहानियों को जीवन के समीप ला खड़ा किया। एक ओर जीवन के यथार्थ की सजीव अभिव्यक्ति तो दूसरी ओर इतिहास और कल्पना के संयोग से युक्त भाव प्रधान कहानियों ने इस युग में कहानी को एक भावभूमि प्रदान की। प्रेमचन्द की- बूढ़ी काकी, ईदगाह, पूस की रात। जयशंकर प्रसाद की- आकाशदीप और पुरस्कार कहानियों ने कहानी को नयी दिशा दी। इसी कालखण्ड में सुदर्शन की- हार की जीत। विश्वम्भरनाथ

कौशिक की- ताई, आचार्य चतुरसेन शास्त्री की- दुखवा मैं कासे कहूँ, मोरी सजनी आदि महत्वपूर्ण एवं युगान्तरकारी कहानियाँ हैं। जैनेन्द्र एवं अज्ञेय ने कहानी की नवीनधारा का सूत्रपात इसी युग में किया। जैनेन्द्र ने चरित्र प्रधान कहानियाँ लिखकर तो अज्ञेय ने सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक दोनों भावों को साथ लेकर कथा सृष्टि की। नि:सन्देह प्रेमचन्द्र युग में कहानी की विभिन्न धाराओं का सूत्रपात होता है।

प्रेमचन्द्रोत्तर युग :-

प्रेमचन्दोत्तर युग कविता एवं कहानी की केन्द्रीय विधा का युग है। यशपाल, 'अज्ञेय' अमृतराय, भैरवप्रसाद गुप्त, इलाचन्द्र जोशी, विष्णु प्रभाकर आदि विभिन्न भावधाराओं का प्रतिनिधित्व करने वाले कथाकारों की रचनाओं ने इस युग को प्रभावित किया। कुछ कहानियों में पुरातन मूल्यों की स्थापना, तो कुछ में विघटित मूल्यों के कारण त्रास और अनास्था का चित्रण तो कहीं वर्ग संघर्ष की पीड़ा का चित्रण देखने को मिलता है। सन् 1955 में 'कहानी' पत्रिका प्रकाशित हुई। कहानी के विकास एवं उसकी स्थापना में प्रस्तुत पत्रिका की अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका है।

1956-57 का यही वह समय है जब 'नई कहानी' नाम से कहानी की अलग पहचान निर्धारित की गयी। छठे दशक में आंचलिक कहानियाँ प्रकाश में आईं। शिवप्रसाद, फणीश्वरनाथ 'रेणु', मार्कण्डेय आदि ने माटी की गंध को रचना के केन्द्र में प्रतिष्ठित किया।

इस युग में प्रेमचन्द की धारा के ही कथाकार भीष्म साहनी, शेखर जोशी, अमरकांत आदि भी कथा रचना कर रहे थे तो आधुनिक युग के तनाव पर केन्द्रित विषयों पर मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, रघुवीर सहाय, धर्मवीर भारती, कुँवर नारायण, रामदरश मिश्र आदि भी कथा सृजन में रत थे।

पाश्चात्य प्रभाव से युक्त कहानियाँ निर्मल वर्मा लिख रहे थे। निर्मल वर्मा की 'परिन्दे, लन्दन की एक रात' आदि कहानियों में रोमानियत, घुटन एवं अनिश्चितता का स्वर ही प्रमुख है।

प्रेमचन्दोत्तर युग में महिला कथाकारों ने भी अपनी सक्रिय उपस्थिति दर्ज की। मन्नू भण्डारी, शिवानी, उषा प्रियंवदा, ममता कालिया, मालती जोशी इत्यादि महत्वपूर्ण महिला कथाकार हैं।

स्वाधीनता के बाद विभिन्न कथा आन्दोलनों, प्रवृत्तियों का उद्‌भव हुआ। जिन्हें नई कहानी, आंचलिक कहानी, सचेतन कहानी, अकहानी, समानान्तर कहानी आदि के नाम के जाना जाता है।

हिन्दी कहानी निरंतर विकसित हो रही है। आज का कथाकार अपने परिवेश को जितनी गहराई से महसूस करता है उतनी ही ईमानदारी से उसकी अभिव्यक्ति भी। दूधनाथ सिंह, रवीन्द्र कालिया, महीप सिंह, आदि आज भी पूरी ईमानदारी से कथा सृजन कर रहे हैं।

निबन्ध

'निबन्ध' शब्द नि+बन्ध से बना है, जिसका अर्थ अच्छी तरह बँधी हुई परिमार्जित प्रौढ़रचना से है। निबंध अपने आधुनिक रूप में 'ऐसे (ESSAY)' शब्द का पर्याय है। अंग्रेजी में इसका अर्थ है प्रयत्न, प्रयोग अथवा परीक्षण। अभिप्राय यह है कि किसी विषय का भली-भाँति प्रतिपादन करना या परीक्षण करना निबंध कहा जाता है।

बाबू गुलाबराय के अनुसार- 'निबन्ध उस गद्य रचना को कहते हैं, जिसमें एक सीमित आकार के भीतर किसी विषय का वर्णन या प्रतिपादन एक विशेष निजीपन, स्वच्छन्दता, सौष्ठव और सजीवता तथा आवश्यक संगति और

सम्बद्धता के साथ किया गया हो।'

डॉ. लक्ष्मीनारायण वार्ष्णेय– 'निबन्ध से तात्पर्य सच्चे साहित्यिक निबंधों से है, जिनमें लेखक अपने–आपको प्रकट करता है विषय को नहीं। विषय तो केवल बहाना मात्र होता है।'

निबन्ध गद्य की सर्वोत्तम विधा है–'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति'– संस्कृत की इस प्रसिद्ध उक्ति का विस्तार कर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा– ''यदि गद्य कवियों की कसौटी है तो निबन्ध गद्य की कसौटी है।'' गद्यकार की रचनात्मक क्षमता एवं प्रतिभा की पहचान निबंध रचना से ही संभव है। 'निबन्ध' का अभिप्राय है 'किसी वस्तु को सम्यक रूप से बाँधना।' अर्थात् 'निबन्ध' वह रचना है जिसमें किसी विशिष्ट विषय से सम्बन्धित तर्क संगत विचार परस्पर गुँथे हुए हों।

निबन्ध का उद्‌भव और विकास :-

निबंध भी गद्य साहित्य की विविध विधाओं की भाँति आधुनिक युग की ही देन है। जिसमें भारतेन्दु जी का महत्वपूर्ण योगदान है। इसके विकास क्रम को चार सोपानों में विभक्त कर सकते हैं–

1. भारतेन्दु युग (1868 से 1900)
2. द्विवेदी युग (1900 से 1920)
3. शुक्ल युग (1920 से 1940)
4. शुक्लोत्तर युग (1920 से 1940)

भारतेन्दु युग :-

हिन्दी निबन्ध साहित्य का प्रारंभ भारतेन्दु युग से होता है। 'लेवी प्राण लेवी' (1870) नामक रचना से निबंध–लेखन की शुरूआत मानी जाती है। भारतेन्दु ने ज्ञान–विज्ञान के विविध क्षेत्र यथा इतिहास, धर्म, दर्शन, पुरातत्व आदि विषयों पर निबंध लिखे। इस युग के अन्य प्रमुख निबंधकार थे–पं. प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट आदि। इन निबंधकारों का उद्‌देश्य, उपदेश, उद्‌बोधन, आह्वान, व्याख्या, व्यंग्य–हास्य आदि माध्यमों से जनता को शिक्षित करना था। भारतेन्दु युग का निबंध–साहित्य विषय–वस्तु तथा रचना–शिल्प दोनों दृष्टियों से वैविध्यपूर्ण था। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, साहित्यिक आदि सभी प्रकार के विषयों पर निबंध लिखे गए। शैली की दृष्टि से वर्णनात्मक, विवरणात्मक, भावात्मक आदि सभी शैलियों का प्रयोग विषयानुरूप किया गया। जनोन्मुख विषय चयन एवं कलात्मक अभिव्यक्ति इस युग के निबंध की विशेषता रही।

विभिन्न निबन्ध एवं निबंधकार हैं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र– 'स्वर्ग में विचार सभा का अधिवेशन', 'ईश्वर बड़ा विलक्षण है', 'एक अदभुत अपूर्व स्वप्न', 'सूर्योदय', 'पाँचवें पैगंबर', 'कश्मीर कुसुम'; बालकृष्ण भट्ट– 'चढ़ती उमर', 'चंद्रोदय', 'बातचीत', 'आँख', 'ईश्वर भी क्या ठठोल है', 'मेला', 'ठेला', 'वकील', 'आशा', 'आत्मनिर्भरता'; प्रतापनारायण मिश्र– 'बुढ़ापा', 'भौं', 'दाँत', 'आप', 'पेट', 'धोखा', 'बात', 'वृद्ध', 'परीक्षा', 'नास्तिक', 'मनोवेग'; बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन'– 'हिन्दी भाषा का विकास', 'उत्साह', 'आलम्बन', ''परिपूर्ण', 'प्रवास'।

द्विवेदी युग:-

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी का युग हिन्दी निबंध विकास यात्रा का महत्वपूर्ण सोपान है। स्वयं द्विवेदी जी ने निबंध लेखन के साथ–साथ 23 निबंधों के हिन्दी अनुवाद भी किए। जिसका प्रकाशन 'सरस्वती' पत्रिका में हुआ। 'हंस

का नीर-क्षीर विवेक' 'कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता' आदि प्रसिद्ध निबंध हैं जिनकी युगान्तरकारी भूमिका है। इतना ही नहीं रचनाकारों के काव्य विषय के निर्धारण में इन निबंधों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। उनके निबंधों में उपदेशात्मकता का पुट है।

द्विवेदी युग के अन्य प्रसिद्ध निबन्धकार हैं- चन्द्रधर शर्मा गुलेरी- ''कछुआ धर्म'', ''न्याय बेटा'', मारेसि मोहि कुठाँव; श्याम सुन्दर दास- 'समाज और साहित्य' इत्यादि।

द्विवेदी युग के अन्य निबंधकार हैं- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जिन्होंने भाव एवं मनोविकार संबंधी तथा विचारात्मक, चिंतनपरक, तार्किक निबंध लिखे। निबंध को श्रेष्ठ साहित्यिक विधा के रूप में प्रतिष्ठित करने का श्रेय आचार्य शुक्ल को जाता है।

इस युग में लिखे गए भाषा तथा व्याकरण विषयक निबंधों ने भाषा को व्यवस्थित रूप देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। द्विवेदी जी के कठोर अनुशासन के कारण निबंधों में निबंधकार के व्यक्तित्व का समावेश नहीं हो पाया। इस युग में ही महावीर प्रसाद द्विवेदी- 'प्रतिभा', 'क्रोध', 'लोभ', 'कविता', 'साहित्य सन्दर्भ', 'साहित्य सीकर', 'विचार-विमर्श', 'कवि' और कविता'; बाबू श्यामसुन्दर दास- 'साहित्यलोचन', 'गद्य कुसुमावली'। पद्मसिंह शर्मा- पद्म पराग और 'प्रबंध मंजरी' प्रमुख निसंघ ओर निबंधकार रहे हैं।

शुक्ल युग :-

हिन्दी निबंध साहित्य के आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के योगदान के कारण इस युग को शुक्ल युग के नाम से जाना जाता है। इस युग में विभिन्न विषयों में विभिन्न भाव धाराओं के निबंध लिखे गए। विचारात्मक, हास्य-व्यंग्य मूलकता, साहित्यिक विषय, भाव परकता, अनुभूति गहनता इस युग के निबंधों की विशेषता रही है। रामचन्द्र शुक्ल के 'जायसी ग्रंथावली की भूमिका, 'भ्रमरगीत सार की भूमिका' समालोचनात्मक निबंध इसी युग में लिखे गए।

बाबू गुलाब राय, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, सियारामशरण गुप्त, मुंशी प्रेमचन्द, पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' आदि के निबंधों ने इस काल को समृद्ध किया। संक्षेप में कहा जा सकता है कि भाव परक, मनोवैज्ञानिक, विचारात्मक, निबंधों के सृजन से इस युग का निबंध साहित्य कथ्य एवं शिल्प वैविध्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण रहा। यद्यपि इस युग के निबंधों में वैयक्तिकता की प्रधानता है। कुछ महत्वपूर्ण निबंधकार निम्नानुसार हैं- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल- 'चिंतामणि भाग-1,2' , 'त्रिवेणी'; बाबू गुलाबराय- 'फिर निराशा क्यों', 'ठलुआ क्लब', 'हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास'; पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी- 'उत्सव', 'समाज-सेवा', 'विज्ञान', 'प्रबंध परिजात', 'प्रदीप पंचपात्र'; डॉ. रघुवीर सिंह- 'जीवन-कण', 'शेष स्मृतियाँ', 'ताज', 'फतेहपुर सीकरी'। सियारामशरण गुप्त- झूठ-सच।

शुक्लोत्तर युगः-

यह वह समय है जब निबंध विधा अध्ययन-अध्यापन का केन्द्र बनीं। इस युग में निबंध के तीन प्रकार देखने को मिलते हैं- 1. विचारात्मक निबंध। 2. भावात्मक निबंध। 3. हास्य-व्यंग्य प्रधान निबंध।

विचारात्मकता, भावात्मकता को सांस्कृतिक धरातल पर आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने निबंधों में वाणी दी। सामाजिक विसंगतियों पर श्री हरिशंकर परसाई ने तथा डॉ. नगेन्द्र एवं आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने विचारात्मक एवं समीक्षात्मक निबंध लिखे। इस युग के महत्वपूर्ण निबंधकार हैं- आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी- 'हिन्दी साहित्य: बीसवीं

शताब्दी'। डॉ. नगेन्द्र– 'विचार और अनुभूति', 'आलोचक की आस्था'; सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'– 'त्रिशंकु', 'भवन्ति'; आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी– 'अशोक के फूल', 'कुटज', 'विचार और वितर्क', 'आलोक पर्व', 'कल्पलता'; राहुल सांकृत्यायन– 'साहित्य निबंधावली'; हरिशंकर परसाई– 'ठिठुरता हुआ गणतंत्र'; रामविलास शर्मा – 'विराम–चिन्ह'; श्री विद्या निवास मिश्र– 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है', 'तुम चंदन हम पानी, चितवन की छाँह'; धर्मवीर भारती– 'पश्यंती' इत्यादि महत्वपूर्ण हैं। ये निबंधकार विभिन्न भावधारा के हैं। अन्य निबंधकार हैं– जैनेन्द्र कुमार– 'जड़ की बात', 'जैनेन्द के विचार', 'साहित्य का श्रेय और प्रेय', 'सोच विचार', 'मंथन', 'प्रस्तुत दर्शन'। डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल– 'कला और संस्कृति', 'कल्पवृक्ष', 'सांस्कृतिक विरासत और संस्कृत'; डॉ. प्रभाकर माचवे– 'मुँह', 'गला', 'गाली', 'बिल्ली', 'मकान'।

शुक्लोत्तर निबंध साहित्य कथ्य और शिल्प दोनों दृष्टियों से पर्याप्त विविधता भरा है। रचना शैली की दृष्टि से निबंधों के छः वर्ग है– 1. वर्णनात्मकता 2. विवरणात्मकता, विश्लेषणात्मकता 3. भावात्मक 4. विचारात्मक 5. संस्मरणात्मक 6. ललित।

शुक्लोत्तर युग में इन सभी वर्गों के निबंध प्रचुर मात्रा में लिखे गए।

आलोचना

आलोचना का अर्थ है किसी भी साहित्यिक रचना को अच्छी तरह देखना या परखना, उसके गुण–दोषों का निर्णय करना। आलोचना को समालोचना भी कहते हैं। समीक्षा शब्द भी इसके लिए प्रयोग में लाया जाता है।
आलोचना एक विचार प्रधान गद्य विधा है। जब साहित्य या साहित्यकार का विवेचन इस प्रकार किया जाए कि पाठक उस रचना के विभिन्न पक्षों से परिचित हो सके, उसके गुण–दोषों को समझ सके तथा रचनाकार की दृष्टि को भी जान सके तो यह आलोचना या समालोचना कहलाएगी।

साहित्य की आलोचना लिखने वाले या आलोचना करने वाले मर्मज्ञ व्यक्ति को आलोचक, समालोचक या समीक्षक कहा जाता है। साहित्यिक आलोचना का मुख्य उद्देश्य है किसी साहित्य की उपलब्धियों पर विचार, किसी एक रचना के गुण और दोष का विवेचन, कवियों या रचनाकारों की अलग–अलग विशेषताओं का वर्णन तथा रचना का आकलन या उसका मूल्यांकन करना।

आलोचना के भेद– आलोचना दो प्रकार की होती है– निर्णयात्मक और व्याख्यात्मक। पद्धति के आधार पर आलोचना के कई प्रकार हो सकते हैं– प्रभाववादी आलोचना, निर्णयात्मक आलोचना, व्याख्यात्मक आलोचना, तुलनात्मक आलोचना।

हिन्दी आलोचना : उद्भव और विकास :-

भारतवर्ष में राजशेखर ने अपनी 'काव्य मीमांसा' में समीक्षा या आलोचना का वास्तविक सूत्रपात किया और औचित्यवादियों ने उसे व्यावहारिक रूप प्रदान किया। रीतिकाल में टीकारूप में आलोचना का रूप देखने को मिलता है। किंतु हिन्दी में आलोचना का वास्तविक प्रारंभ उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' से ही

मानना समीचीन होगा। हिन्दी आलोचना के विकास क्रम को हम निम्न सोपानों में वर्गीकृत कर सकते हैं:-

1. भारतेन्दु युग (1870 से 1900)
2. द्विवेदी युग (1900 से 1920)
3. शुक्ल युग (1921 से 1940)
4. शुक्लोत्तर युग (1941 से अद्यतन)

भारतेन्दु युग:-

भारतेन्दु युग में आलोचना का आरंभ पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से हुआ। 'हिन्दी प्रदीप' में गंभीर आलोचना का प्रकाशन हुआ। वदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने 'आनन्द कादम्बनी' पत्रिका (1882) में 'संयोगिता स्वयंवर' के नाट्य दोष का विवेचन। और 'बंग-विजेता' के भाषा संबंधी दोषों की ओर निर्देश कर हिन्दी में आलोचना की नींव रखी। यद्यपि दोष दर्शन ही इस आलोचना के केन्द्र में था। इसके बाद बालकृष्ण भट्ट ने इस परंपरा को आगे बढ़ाया। भट्ट जी की 'नील देवी, ''परीक्षा गुरु'', एकान्तवासी योगी' संबंधी आलोचना महत्वपूर्ण है।

नागरी प्रचारिणी पत्रिका (1897) के प्रकाशन से समालोचना को नया बल मिला। भारतेन्दु युग में हिन्दी आलोचना का सूत्रपात तो हो गया किंतु सूक्ष्म काव्य-सौन्दर्य और रचना में निहित जीवन मूल्यों की समीक्षा का रूप देखने को नहीं मिलता।

द्विवेदी युग:-

इस युग के हिन्दी आलोचना की कई महत्वपूर्ण पद्धतियाँ प्रचलित हुईं। आलोचना के पाँच रूप लक्षित किए जा सकते हैं- शास्त्रीय आलोचना, तुलनात्मक, मूल्यांकन एवं निर्णय, अन्वेषण एवं अनुसंधान परक, परिचयात्मक तथा व्याख्यात्मक आलोचना। शास्त्रीय आलोचना की प्रमुख कृति जगन्नाथ प्रसाद 'भानु' की- काव्य प्रभाकर (1910), ''छन्द सारावली'' (1917)। इसकी भूमिका अंग्रेजी में लिखी गई और हिन्दी में अनेक पारिभाषिक शब्दों के अंग्रेजी पर्याय भी दिए गए।

इस युग में तुलनात्मक मूल्यांकन समीक्षा की प्रमुखता रही। 1907 ई. में पद्मसिंह शर्मा ने आलोचना को प्रारंभ किया। अन्वेषणपरक आलोचना का प्रारंभ नागरी प्रचारिणी पत्रिका (1897)के प्रकाशन से हुआ। इस युग में आलोचनात्मक कृतियों के अनुवाद भी प्रस्तुत किए गए। 1905 में रामचन्द्र शुक्ल ने एडिसन के 'एस्से ऑन इमेजिनेशन' का 'कल्पना का आनन्द' नाम से अनुवाद किया जो उल्लेखनीय कृति है।

इस युग में आलोचना एक स्वतंत्र विषय के रूप में मान्य हुई।

शुक्ल युग :-

महावीर प्रसाद द्विवेदी एवं उनके समकालीन समीक्षकों द्वारा आरंभ किए गए आलोचना साहित्य को सम्यक आकार देने का श्रेय तत्कालीन समालोचकों विशेषकर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को जाता है। आज आलोचना हिन्दी साहित्य की आवश्यकता बन गई।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी आलोचना में प्रमुखत: दो काम किए। एक प्राचीन काव्यशास्त्र की पुनर्व्याख्या करके उसे फिर से रचनात्मकता के लिए संदर्भवान बनाया। दूसरे अपनी व्यावहारिक आलोचना की प्रक्रिया में उन्होंने अनेक आलोचना संबंधी पारिभाषिक शब्दों को नई अर्थवत्ता से युक्त किया। अनेक पारिभाषिक शब्दों का निर्माण

किया। रस विवेचना को मनोवैज्ञानिक आधार प्रदान किया। इस दृष्टि से 'रस-मीमांसा' महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसके अलावा इस युग के प्रमुख आलोचक हैं- आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, शान्तिप्रिय द्विवेदी, डॉ. नगेन्द्र, बाबू गुलाबराय, हजारीप्रसाद द्विवेदी, पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, चन्द्रबली पाण्डेय, कृष्ण शंकर शुक्ल, रमाशंकर 'रसाल' आदि हैं।

शुक्लोत्तर युग :-

शुक्लोत्तर आलोचना सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनों क्षेत्रों में सम्पन्न हुई। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने शुक्ल जी से प्रभावित होने के बावजूद समीक्षा कार्य में अपनी मौलिक और स्वतंत्र दृष्टि का परिचय दिया। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने नवीन मानवतावादी मूल्यों की स्थापना की। डॉ. नगेन्द्र ने रसवादी समीक्षा की। स्वतंत्रतापूर्व की समीक्षा पद्धति का अधिक विकसित एवं बहुमुखी रूप स्वातन्त्र्योत्तर युग में देखने को मिलता है।

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी आलोचना का विषय प्रधानत: प्रगतिशील और व्यक्तिवादी आलोचना के द्वन्द्व से हुआ इस प्रकार की आलोचना 'अज्ञेय', लक्ष्मीकांत वर्मा, विजयदेव नारायण साही, डॉ. धर्मवीर भारती आदि के लेखों में मिलती है। प्रगतिशील आलेचकों में शिवदान सिंह चौहान, डॉ. रामविलास शर्मा एवं डॉ. नामवर सिंह प्रमुख हैं। डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी, डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय, राममूर्ति त्रिपाठी आदि अन्य उल्लेखनीय आलोचक हैं।

गद्य साहित्य की अन्य महत्वपूर्ण विधाएँ -

जीवनी

जीवनी में लेखक किसी व्यक्ति का जीवन चरित्र प्रस्तुत करता है। इसमें प्राय: उस व्यक्ति की जन्म से लेकर मृत्यु तक की सभी घटनाएँ होती हैं। इसमें व्यक्ति के व्यक्तित्व, कृतित्व तथा उसकी उपलब्धियों का वर्णन रहता है। जीवनी न इतिहास है न उपन्यास। पर इन दोनों विधाओं की विशेषताएँ इसमें समाहित हो जाती है।

जीवनी किसी महापुरुष की ही लिखी जाती है। महापुरुषों की जीवनियाँ प्रकाश स्तम्भ की भाँति मार्ग निर्देश करती हैं। जीवनी चरितनायक का यथार्थ रूप प्रस्तुत करना चाहिए। जीवनी लेखन में तटस्थता का भाव आवश्यक है। जीवनी में सरलता होने से पाठक पढ़ता चलता है और विश्वसनीयता रहने से उसका जीवन अपनाने की चेष्टा करता है।

जीवन में महान ख्याति, सम्मान पाने वालों की जीवनी से परिचित होने की ललक पाठकों में पायी जाती है। पाठकों की इसी ललक को परितोष देने के लिए जीवनी-लेखन का चलन हुआ। प्राचीन हिन्दी साहित्य में गोस्वामी गोकुलनाथ की 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' और 'दो सो बावन वैष्णवन की वार्ता' तथा नाभादास की 'भक्तमाल' को जीवनी लेखन का आदि रूप कहा जा सकता है, किंतु खड़ीबोली गद्य में जीवनी लेखन का प्रारंभ भारतेन्दु युग में कार्तिक प्रसाद खत्री, देवी प्रसाद मुंसिफ, राधाकृष्णदास से माना जा सकता है। द्विवेदी युग में सुंदरलाल, बल्देव उपाध्याय ने भी इस क्षेत्र में लेखन कार्य किया।

पं. बनारसीदास चतुर्वेदी ने पं. सत्यनारायण कविरत्न की जीवनी लिखी है। वह कवि का व्यक्तित्व समझाने में बहुत सहायक हुई है। ब्रजरत्नदास जी ने भारतेन्दु बाबू का बड़ा सुन्दर जीवन-चरित्र लिखा है। हरि रामचन्द्र दिवाकर की लिखी हुई, संत तुकाराम की विचारपूर्ण जीवनी भी अच्छी है। इनके अतिरिक्त गणेशशंकर विद्यार्थी, वीर केसरी शिवाजी,

मीर कासिम, महात्माओं के दर्शन आदि कई पुस्तकें उल्लेखनीय हैं। इन पुस्तकों ने जीवनी साहित्य की आंशिक पूर्ति की है। रामनरेश त्रिपाठी की 'मालवीय जी के साथ तीस दिन' मालवीय जी के श्रीमुख से सुनी हुई उनकी जीवनी है। जीवनी लेखन के इस दौर में मन्मथनाथ गुप्त, मुकन्दीलाल वर्मा, छविनाथ पाण्डेय आदि ने अच्छा कार्य किया। निराला पर डॉ. रामविलास शर्मा की लिखी जीवनी साहित्य संसार में सर्वाधिक प्रसिद्धि प्राप्त कर चुकी है। विष्णु प्रभाकर कृत शरतचन्द्र चटर्जी पर लिखी 'आवारा मसीहा' तो कीर्ति स्तम्भ मानी जाती है। राही मासूम रजा की शहीद अब्दुल हमीद पर, भगवती प्रसाद सिंह की गोपीनाथ कवि पर, ओंकार शरद की राममनोहर लोहिया पर, शांति जोशी की सुमित्रानंदन पंत पर लिखी जीवनियाँ भी महत्वपूर्ण हैं। बालोपयोगी जीवनी लिखने के क्षेत्र में श्री व्यथित हृदय का नाम सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। अमृतराय द्वारा लिखित प्रेमचन्द की जीवनी-'कलम का सिपाही' भी उल्लेखनीय है।

आत्मकथा

आत्मकथा और जीवनी में पर्याप्त अंतर है। अपने जीवन की घटनाओं का स्वयं लिखा हुआ विवरण आत्मकथा है, तो दूसरे के द्वारा लिखा हुआ विवरण जीवनी है। आत्मकथा में पूरी ईमानदारी के साथ आत्मचित्रण करना होता है, जो कठिन कार्य है। इसकी एकमात्र कसौटी है कि 'मैं' अपने को कितनी निर्ममता से छील सकता हूँ। यही कारण है कि चरित्रवान तथा शुद्ध निर्मल हृदय के ही मानव आत्मचरित्र लिख सकते हैं। आत्मकथा में लेखक अपने बीते हुए जीवन का सिंहावलोकन करता है। यथार्थपरकता इसका प्रधान लक्षण है। जहाँ लेखक अपने अतीत और वर्तमान को झाँकता है, वहीं अपने परिवेश से पूरी तरह जुड़ा होता है। चरित्रवान व्यक्ति की आत्मकथा प्रेरणास्रोत भी बनती है। आत्मकथा का प्रारंभ ही मध्यकाल में जैन साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान बनारसीदास जैन की 'अर्द्धकथानक' 1641 ई. से होता है। यह पद्यात्मक आत्मकथा है जिसमें तत्कालीन युग की सम्पूर्ण झाँकी है। पर व्यवस्थित रूप से 'आत्मकथा' का लेखन आधुनिक काल में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से ही माना जाना उपयुक्त होगा।

आत्मकथा के लेखन के क्षेत्र में भी भारतेन्दु जी ने 'कुछ आप बीती कुछ जग बीती' लिखकर पहल की थी। ऐसे ही महावीर प्रसाद द्विवेदी के कई आत्मकथांश 'सरस्वती' के कई अंकों में छपे। श्यामसुन्दर दास कृत 'मेरी आत्म कहानी' इस क्षेत्र में सम्भवत: पहली पुस्तकाकार कृति है। मूलत: गुजराती में लिखी महात्मा गांधी की आत्मकथा का हिन्दी में अनुवाद बेहद लोकप्रिय हुआ। नेहरू जी की आत्मकथा का हिन्दी में अनुवाद 'मेरी कहानी' भी प्रशंसित रहा।

स्वामी श्रद्धानन्द लिखित 'कल्याण मार्ग का पथिक' एक अच्छी आत्मकथा है। 'कल की बात' नामक कुछ हिन्दी के लेखकों की संक्षिप्त आत्मकथाएँ सरस्वती प्रेस, बनारस से प्रकाशित हुई है। सेठ गोविन्ददास ने तीन भागों में 'आत्म निरीक्षण' नाम से अलग जीवनी लिखी है। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद की आत्मकथा मूल रूप में हिन्दी में ही लिखी गई है। इस पर नागरी प्रचारिणी सभा ने 'द्विवेदी पुरस्कार' दिया है। कई और पुरस्कार भी मिले हैं। वास्तव में यह आत्मकथा बहुत सुन्दर है। आचार्य चतुरसेन लिखित 'मेरी आत्मकहानी' आत्मकथा की श्रेष्ठ कृति है। इस क्षेत्र में पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' की आत्मकथा 'अपनी खबर' उल्लेखनीय कृति है। वृन्दावनलाल वर्मा लिखित 'अपनी कहानी' तथा वियोगी हरि कृत 'मेरा जीवन प्रवाह' अच्छी आत्मकथाएँ हैं। हरिवंशराय बच्चन की आत्मकथा के तीन भाग प्रकाशित हुए – 'क्या भूलूँ

क्या याद करूँ', 'नीड़ का निर्माण फिर' और 'बसेरे से दूर'। आत्मकथा के क्षेत्र में बच्चन जी की ये कृतियाँ सर्वाधिक चर्चित रहीं। 'मेरी असफलताएँ' नामक कृति में बाबू गुलाबराय जी के आत्मकथात्मक अंश संकलित हुए हैं। पंत जी का 'साठ वर्ष– एक रेखांकन' भी उल्लेखनीय है।

रेखाचित्र

रेखाचित्र मूल रूप से चित्रकला का शब्द है। रेखाओं के द्वारा बना हुआ चित्र रेखाचित्र है। चित्र में रेखाएँ जो काम करती हैं, वही काम साहित्य में शब्द करते हैं। जब लेखक शब्दों के द्वारा किसी व्यक्ति, वस्तु या दृश्य का इस प्रकार वर्णन करता है कि आँखों के आगे उस व्यक्ति वस्तु या दृश्य का चित्र खिंचता चला जाए, तो इसे रेखाचित्र कहते हैं। रेखाचित्र पूरी तरह से न कहानी है और न निबंध किंतु इन दोनों के तत्वों का कुछ न कुछ समावेश उसमें अवश्य है। यही कारण है कि रेखाचित्र को निबंध की श्रेणी में रख दिया जाता है या उसकी गणना कहानियों में की जाती है।

'रेखाचित्र' का प्रयोग हिन्दी में रेखाओं से बनाए हुए चित्र से होता है। रेखाचित्र के लिए हिन्दी में 'व्यक्ति चित्र, चरित लेखन, शब्द चित्र' आदि अनेक शब्द हैं, किंतु रेखाचित्र ही सर्वाधिक प्रयोग में आता है। हिन्दी रेखाचित्र का विकास दूसरे दशक में प्रारंभ हुआ जबकि पं. बनारसीदास चतुर्वेदी जी का पहला रेखाचित्र सन् 1912 में मर्यादा में 'औरंगजेब' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। यही कारण है कि पं. बनारसीदास जी को इस विधा का भीष्म पितामह कहा जा सकता है।

रेखाचित्र की विशेषता यह होती है कि इसमें साहित्यकार अपनी कल्पना या अनुभूति का अलग से कोई रंग नहीं भरता, जिस व्यक्ति, वस्तु या दृश्य का वर्णन करना है, उसका हू–ब–हू चित्र अंकित कर देता है। संस्मरण और रेखाचित्र दोनों में ही वर्ण्य विषय काल्पनिक न होकर यथार्थ होता है। पर संस्मरण में आत्मपरकता अधिक होती है और रेखाचित्र में कम।

संस्मरण

संस्मरण का अर्थ है सम्यक् (भलीभाँति) स्मरण करना। किसी स्मरणीय व्यक्ति या घटना की यादों को व्यक्त किया जाता है। लेखक का स्मरणीय व्यक्ति के साथ व्यक्तिगत संबंध होना आवश्यक है। यह आत्मपरक हुआ करता है। लेखक उत्तम पुरुष (मैं, हम)का प्रयोग करते हुए व्यक्ति या घटना का वर्णन करता है।

'संस्मरण' और 'रेखाचित्र' में कोई सूक्ष्म रेखा खींचना सरल नहीं है जिनका परिगणन एक लेखक ने रेखाचित्र विधा में किया है उसका अन्य व्यक्ति ने संस्मरण विधा में। महादेवी वर्मा की 'स्मृति की रेखाएँ' इसका ज्वलन्त उदाहरण है। 'स्मृति' शब्द जहाँ उस कृति को संस्मरण की ओर ले जा रही है वही रेखाएँ 'रेखाचित्र' की विधा की ओर। दोनों में विशेष रेखाओं का अंकन संभव है, संस्मरण अतीत का हो सकता है और रेखाचित्र किसी भी काल का संभव है। हमारे चेतन में भविष्य की कोई कल्पना स्पष्ट हो तो उसका रेखांकन भी संभव है।

इस विधा का आरंभ भी भारतेन्दु युग से हुआ। ब्राह्मण पत्रिका में प्रकाशित 'प्रताप चरित' से (प्रताप) संस्मरण का आरंभ माना जा सकता है। राहुल सांकृत्यायन का 'शांति निकेतन' में संस्मरण का अच्छा उदाहरण है। महादेवी वर्मा ने 'पथ के साथी' शीर्षक पुस्तक में अपने समय के साहित्यकारों पर मार्मिक संस्मरण लिखे हैं।

वास्तविक रूप से संस्मरण साहित्य का विकास पद्मसिंह शर्मा के लिखे संस्मरणों से समझना चाहिए। श्रीराम शर्मा के 'सन् ब्यालीस के संस्मरण' इस दौर की उल्लेखनीय रचना है। रामवृक्ष बेनीपुरी के संस्मरण 'माटी की मूरतें' में संकलित हुए हैं। शांतिप्रिय द्विवेदी के संस्मरण 'परिब्राजक की आत्मकथा' और ये 'पदचिह्न' में संकलित हुए हैं। पं. बनारसीदास चतुर्वेदी के लिखे कुछ महानुभावों के संस्मरण 'संस्मरण' नाम से प्रकाशित हो गए हैं। उनमें संस्मरणों के साथ श्रद्धापूर्ण विवेचन भी है। आपकी 'रेखाचित्र' नाम की पुस्तक में प्रसिद्ध व्यक्तियों के रेखाचित्र के अतिरिक्त संस्मरण और श्रद्धांजलियाँ भी हैं। स्व. इन्द्र विद्यावाचस्पति ने भी अपनी पत्रकारिता पर संस्मरण लिखे हैं। 'मैं इनका ऋणी हूँ' नाम से कुछ विशिष्ट व्यक्तियों पर भी आपने लिखा है। डॉ. सुशील नायक की लिखी हुई 'कारावास की कहानी' अनुदित होते हुए भी हिन्दी के संस्मरण साहित्य के लिए बहुत अच्छी देन है। आत्मकथात्मक संस्मरणों में महादेवी के 'अतीत के चलचित्र' बड़े रोचक और सजीव हैं। कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर कृत 'भूले हुए चेहरे, दीप जले शंख बजे' देवेन्द्र सत्यार्थी कृत 'रेखाएँ बोल उठीं, क्या गोरी क्या साँवरी' श्रीनारायण चतुर्वेदी के 'मनोरंजक संस्मरण' राहुल सांकृत्यायन कृत 'बचपन की स्मृतियाँ' इलाचंद्र जोशी कृत 'गोर्की के संस्मरण' ललिता शास्त्री कृत 'मेरे पति मेरे देवता' आदि इस विधा में उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। विभिन्न अभिनंदन ग्रंथों में भी अभिनंदनीय व्यक्तियों पर लिखे संस्मरण संकलित रहते हैं। साथ ही पत्र-पत्रिकाओं में भी साहित्यकारों, कलाकारों, राजनेताओं पर संस्मरण प्रकाशित होते रहते हैं।

रेखाचित्र और संस्मरण में अन्तर :-

रेखाचित्र तथा संस्मरण एक-दूसरे से मिलती-जुलती विधाएँ हैं। रेखाचित्र की भाँति संस्मरण में भी बीती हुई घटना का इस तरह वर्णन किया जाता है कि उसका हू-ब-हू चित्र आँखों के आगे अंकित हो जाता है। रेखाचित्र विषय प्रधान होता है, संस्मरण विषयी प्रधान। संस्मरण प्राय: प्रसिद्ध व्यक्ति के विषय में ही लिखा जाता है, रेखाचित्र के लिए यह आवश्यक नहीं है। रेखाचित्र के विषय विविध हो सकते हैं, संस्मरण का विषय कोई विशेष व्यक्ति या विशेष घटना ही होता है। संस्मरण में तटस्थ दृष्टि होनी चाहिए जबकि रेखाचित्र काल्पनिक भी हो सकता है।

यात्रा-वृत्त

यात्रा-वृत्त संस्मरण और रेखाचित्र से मिलती-जुलती विधा है। इसमें लेखक अपनी किसी यात्रा का रोचक वर्णन करता है, जिससे जिस स्थान की यात्रा की गई है, उसकी ऐतिहासिक, भौगोलिक तथा सांस्कृतिक विशेषताओं से पाठक परिचित होते हैं। सौन्दर्य का बोध और कौतूहल जगाए रखना ये दोनों यात्रावृत्त की खूबियाँ हैं। यात्रावृत्त विषय प्रधान भी हो सकता है, विषयी प्रधान भी। देशकाल के विषय में पाठक की जानकारी बढ़ाना इसका मुख्य उद्देश्य है।

विवरण की प्रधानता यात्रावृत्त की विशेषता है, इसी कारण इसे निबंध के अंतर्गत माना जाता था, किंतु अब इसे स्वतंत्र विधा की संज्ञा प्राप्त है। विवरण का क्रमपूर्वक होना इसकी मूलभूत विशेषता है। यात्रा विवरण में निम्न बातों पर बल दिया जाता है-

- कोई प्राकृतिक स्थल हो।
- कोई ऐतिहासिक महत्व का स्थल/भवन।

- यदि भवन है तो स्थापत्य कला।
- कोई आश्चर्यजनक घटना/वस्तु।
- क्या स्थान विशेष का ऐतिहासिक/पुरातात्विक, सामाजिक सांस्कृतिक व धार्मिक महत्व है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने स्वयं हरिद्वार, बैजनाथ आदि के यात्रावृत्त लिखकर इस विधा की शुरूआत की थी। बालकृष्ण भट्ट लिखित 'कतिकी का नहान' प्रतापनारायण मिश्र कृत 'विलायत यात्रा' इसी कोटि की प्रारंभिक रचनाएँ हैं। इस दिशा में देवेन्द्र सत्यार्थी लिखित 'चाँद सूरज के वीरन' पुस्तकाकार में पहली कृति मानी जा सकती है। राहुल सांकृत्यायन का यात्रावृत्त लेखन की दिशा में किया गया योगदान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। उनके द्वारा लिखित यात्रावृत्त में प्रमुख रूप से 'मेरी यूरोप यात्रा' एवं 'मेरी तिब्बत यात्रा' हैं। अज्ञेयकृत (अरे, यायावर रहेगा याद), रांगेय राघव (तूफानों के बीच), भगवतशरण उपाध्याय (वो दुनिया), रामवृक्ष बेनीपुरी (पैरों में पंख बाँधकर), काका कालेलकर (हिमाचल यात्रा), मोहन राकेश (आखिरी चट्टान तक), दिनकर (देश-विदेश), यशपाल जैन (पड़ोसी देशों में), अमृतराय (सुबह के रंग), यशपाल (लोहे की दीवारों के दोनों ओर) अमृतलाल बेगड़ (सौन्दर्य की नदी नर्मदा) इस क्षेत्र में उल्लेखनीय हैं। यात्रा वृत्त लेखकों में इनके अतिरिक्त विष्णु प्रभाकर, राजेन्द्र अवस्थी, हिमांशु जोशी, निर्मल वर्मा आदि के नाम भी महत्वपूर्ण हैं।

यात्रा साहित्य को विभिन्न शैलियों में संस्मरणात्मक, पत्र शैली, डायरी शैली, आत्मकथात्मक आदि में लिखा जाता रहा है। राहुल सांकृत्यायन ने सर्वाधिक यात्राएँ की और यात्रा वृत्तान्त भी लिखे। उन्होंने घुमक्कड़ शास्त्र की रचना की। यात्रा विवरण से वह स्थान विशेष को पाठक के समक्ष मूर्त रूप में प्रस्तुत कर देते हैं।

रिपोर्ताज

रिपोर्ताज एक नवीन विधा है। 'रिपोर्ताज' मूल रूप से फ्रेंच भाषा का शब्द है। 'रिपोर्ताज' शब्द का अभिप्राय है- रोचक और भावात्मक चित्रण। हाल ही में घटी घटना तथा लेखक के द्वारा प्रत्यक्ष देखी गई घटनाओं का अंतरंग अनुभव के साथ किया गया वर्णन रिपोर्ताज है। अंग्रेजी में इसी से मिलता-जुलता शब्द 'रिपोर्ट' है जिसका अभिप्राय है- किसी विषय का यथातथ्य विवरण। जबकि 'रिपोर्ताज' में किसी सत्य घटना का यथातथ्य वर्णन करते हुए भी उसमें कथात्मक, सरसता और रोचकता का समावेश होता है। रेखाचित्र, संस्मरण, जीवनी तथा आत्मकथा के समान इसका विषय भी यथार्थ हुआ करता है। इसमें लेखक प्रत्यक्ष दर्शन के आधार पर किसी घटना की रिपोर्ट तैयार करता है और उसमें अपनी सहज साहित्यिक कला से जब लालित्य ले आता है तब वही गद्य की आकर्षक विधा 'रिपोर्ताज' कहलाती है। वास्तव में 'रिपोर्ट' के कलात्मक एवं साहित्यिक रूप को ही 'रिपोर्ताज' कहते हैं। सहसा घटित होने वाली अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना ही इस विधा को जन्म देने का मुख्य कारण बन जाती है। 'रिपोर्ताज' विधा पर सर्वप्रथम शास्त्रीय विवेचन श्री शिवदान सिंह चौहान ने मार्च 1941 में प्रस्तुत किया। हिन्दी में 'रिपोर्ताज' की विधा प्रारंभ करने का श्रेय 'हंस' पत्रिका को है। जिसमें 'समाचार और विचार' शीर्षक एक स्तम्भ की सृष्टि की गई। इस स्तम्भ में प्रस्तुत सामग्री 'रिपोर्ताज' ही होती थी।

हिन्दी के कुछ मूर्धन्य समाचार पत्रों में संसदीय कार्यकलापों, विशिष्ट सम्मेलनों, युद्धों, बाढ़ या दुर्भिक्ष जैसी विपत्तियों का जो हृदयस्पर्शी विवरण देखने में आता है, वह रिपोर्ताज साहित्य का ही एक रूप है। इस संदर्भ में रांगेय राघव का 'तूफानों के बीच' शीर्षक रिपोर्ताज बहुचर्चित है। इसी प्रकार भदन्त आनन्द कौसल्यायन कृत 'देश की मिट्टी बोलती है', धर्मवीर भारती कृत 'युद्ध यात्रा', निर्मल वर्मा का 'चीड़ों पर चांदनी', शंकरदयाल सिंह की 'युद्ध के चौराहे तक', कन्हैया लाल मिश्र प्रभाकर कृत 'क्षण बोले कण मुस्काएँ' शीर्षक की रिपोर्ताज रचनाएँ भी उल्लेखनीय हैं।

साक्षात्कार (इन्टरव्यू- साहित्य)

साक्षात्कार भी एक आधुनिक गद्य विधा है। इसे भेंटवार्ता भी कहते हैं। अंग्रेजी में इसके लिए 'इंटरव्यू' शब्द का प्रयोग होता है। यह विधा मूल रूप से पत्रकारिता की देन है। विभिन्न धार्मिक महापुरुषों, राजनीतिक नेताओं, उच्चकोटि के सामाजिक या साहित्यिक व्यक्तियों के विचार जानने और उन्हें सर्वसाधारण तक पहुँचाने के लिए प्राय: पत्र प्रतिनिधि उनसे भेंट करके अभीष्ट विषय या समस्या पर वार्ता करते हैं और उस वार्ता के निष्कर्षों को साहित्यिक शैली में प्रस्तुत करके पाठकों के सामने प्रस्तुत कर देते हैं। ऐसी रचनाएँ भेंट वार्ता कहलाती है। इस विधा के लिए साक्षात्कार और परिचर्चा आदि नाम भी प्रचलित हैं।

साक्षात्कार के लिए जिस व्यक्ति से साक्षात्कार लेना है, उसके संबंध में साक्षात्कार कर्ता को प्रारंभिक जानकारी होना चाहिए। उसे साक्षात्कार के समय पूछे जाने वाले प्रश्नों को विषयानुसार क्रमबद्ध कर लेना चाहिए। भेंटकर्ता को पर्याप्त चिंतन-मनन के बाद प्रश्नावली तथा प्रश्नों का क्रम तैयार कर लेना चाहिए, क्योंकि भेंट का प्रारंभ और अंत अत्यधिक महत्व रखता है।

श्रीकांत वर्मा ने विश्व के महत्वपूर्ण कवियों व साहित्यकारों से जो साक्षात्कार लिए वे 'अंधेरे में' शीर्षक पुस्तक में संकलित हैं। 'मेरे साक्षात्कार' शीर्षक से नागार्जुन तथा डॉ. रामविलास शर्मा के साक्षात्कार प्रकाशित हैं। किसी सुधि व्यक्ति द्वारा लिया गया साक्षात्कार, साहित्य की अनुपम देन बन जाता है। बच्चन जी ने एक पत्र में इसका उद्देश्य बताते हुए लिखा है- 'इंटरव्यू का ध्येय है पढ़ने वाला यह अनुभव करे कि जैसे वह कवि विशेष से मिल आया है, उसके पास से ही आया है, उसे सूंघ आया है, छू आया है, उसे गले लगाया है।'

वैसे भारतेन्दु युग में यत्र-तत्र इस विधा के बीज विद्यमान रहे पर द्विवेदी युग में सर्वप्रथम समालोचक के सितम्बर 1905 ई. के अंक में पं. चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' का संगीत के महान साधक पं. विष्णु दिगंबर पुलस्कर से लिया गया साक्षात्कार 'संगीत की धुन' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। इसके बाद अनेक विधाओं के सिद्ध लेखक मूर्द्धन्य पत्रकार व पत्र लेखक पं. बनारसी दास चतुर्वेदी ने इस विधा को आगे बढ़ाया। उन्होंने सुप्रसिद्ध कवि 'रत्नाकर' से भेंट की और 'रत्नाकर से बातचीत' शीर्षक से विशाल भारत में प्रकाशित की। उनके द्वारा ही दूसरी भेंटवार्ता प्रेमचंद के साथ 'दो दिन' शीर्षक से विशाल भारत (1932) में प्रकाशित हुई। अब पत्रकारिता के उत्तरोत्तर विकास के साथ-साथ इसका भी विकास होता जा रहा है।

लघुकथा

आज से कुछ दशक पूर्व तक लघुकथा विधा स्थापित नहीं थी पर अब यह विधा न उपेक्षित है न अनजानी। क्योंकि आधुनिक कहानी के संदर्भ में 'लघुकथा' का अपना स्वतंत्र महत्व एवं अस्तित्व है। लघुकथाएँ वस्तुत: दृष्टान्त के रूप में विकसित हुई है। ऐसे दृष्टान्त मुख्यतया नैतिक और धार्मिक क्षेत्रों से प्राप्य हैं। इस प्रकार नैतिक दृष्टान्तों के स्तर से

नैतिक लघु कथाएँ सर्वत्र मिलती हैं। जैसे 'पंचतंत्र' की कहानियाँ, ईसप की कहानियाँ, महाभारत, बाईबिल, जातक' आदि की कथाएँ। इसी प्रकार धार्मिक दृष्टान्तों के अर्न्तगत भी लघु कथाओं के अनेक उदाहरण मिल सकते हैं।

आधुनिक कहानी के संदर्भ में 'लघुकथा' का अपना स्वतंत्र महत्व एवं अस्तित्व है। आधुनिक काल में इसका प्रयोग इस शताब्दी के प्रारंभ से मिल जाता है। डॉ. रामकुमार वर्मा, श्री जगदीश चन्द्र मिश्र (1901)को इस विधा का जन्मदाता मानते हैं। पर उनकी लघु कथाओं में कथातत्व कम, कवित्व अधिक था। 'सरस्वती' में प्रकाशित 'विमाता'(1918), श्री शिवपूजन सहाय की 'एक अद्‌भुत कवि' (1924)विशेष उल्लेखनीय हैं।

इस शताब्दी के मध्य लघुकथाकार के रूप में महत्वपूर्ण नाम है कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' का हिन्दी में सुदर्शन, रावी, रामनारायण उपाध्याय आदि की मार्मिक लघुकथाएँ है। 'रावी' ने इसे नई भावभूमि पर पहुँचाया। प्रेमचन्द और प्रसाद द्वारा रचित तथा जैनेन्द्र एवं अज्ञेय द्वारा लिखी कतिपय रचनाएँ लघुकथा का सुन्दर उदाहरण हैं।

जीवन की उत्तरोत्तर द्रुतगामिता और संघर्ष के फलस्वरूप अभिव्यक्ति की संक्षिप्तता ने आज कहानी के क्षेत्र में लघुकथाओं को अत्यधिक प्रगति दी। विष्णु प्रभाकर जी के अनुसार 'लघुकथा अपने आप में एक स्वतंत्र सशक्त विधा है। इसकी शक्ति के पीछे सामाजिक परिवर्तन की पूरी प्रक्रिया है।' इसीलिए लघुकथा में व्यंग्य का पुट पाया जाता है, क्योंकि रचना की दृष्टि से लघुकथा में भावनाओं का उतना महत्व नहीं है, जितना किसी सत्य का, किसी विचार का, विशेषकर उसके सारांश का महत्व है। प्रमुख लघुकथाकार हैं— हरिशंकर परसाई इत्यादि।

पत्र साहित्य

किसी भी व्यक्ति/साहित्यकार द्वारा लिखे गए पत्रों में उसकी सहजता एवं उसके व्यक्तित्व का स्वाभाविक रूप उभरकर सामने आता है। क्योंकि यह एक व्यक्ति/ साहित्यकार द्वारा दूसरे व्यक्ति को लिखा गया होता है। उद्‌देश्य संभवत: छपवाने का नहीं हो पर कभी-कभी ऐसे पत्र साहित्यिक दृष्टि से मूल्यवान तथा समाज के लिए एक धरोहर बन जाते हैं। उदाहरणार्थ महात्मा गांधी द्वारा लिखे गए विभिन्न पत्र एवं पं. नेहरू द्वारा जेल में रहकर इंदिरा गांधी को लिखे गए पत्र (पिता के पत्र पुत्री के नाम)।

पत्रों के संबंध में पं. बनारसीदास चतुर्वेदी का कथन है- 'जीवन में पत्रों का बड़ा महत्व है। शरीर में रक्त-मांस का जो स्थान है, वही स्थान चरित्रों में छोटे-छोटे किस्से कहानियों तथा पत्रों का है।'

हिन्दी पत्रिकाओं में प्रकाशित होने वाले जिस पत्र-साहित्य को ख्याति मिली, उसमें बालमुकुन्द गुप्त के 'भारत मित्र' में प्रकाशित 'शिव शम्भु के चिट्ठे' विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' द्वारा 'चाँद' में प्रकाशित 'दुबे जी की चिट्ठी' प्रमुख हैं। महावीर प्रसाद द्विवेदी के पत्र 'पत्रावली' नामक पुस्तक में संकलित हैं। प्रेमचन्द जी भी अच्छे पत्र लेखक थे। उनके पत्रों का संग्रह श्री अमृत राय ने 'चिट्ठी-पत्री' भाग-1 व 2 शीर्षक से प्रकाशित किया है। 'निराला' के दुर्लभ पत्रों का संकलन 'निराला की साहित्य साधना' के तृतीय खण्ड में डॉ. रामविलास शर्मा ने सम्पादित किया है। पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने तो उपन्यास 'चन्द हसीनों के खतूत' ही पत्र शैली में लिखा है। बनारसीदास चतुर्वेदी जी द्वारा सम्पादित 'पद्मसिंह शर्मा के पत्र' भी उल्लेखनीय पत्र साहित्य हैं। स्वयं बनारसीदास चतुर्वेदी ने अपने जीवन में हजारों पत्र लिखे हैं, वे एक अच्छे पत्र-लेखक थे।

गद्य काव्य

गद्य काव्य में संवेदनशीलता एवं रसात्मकता तो छन्दोबद्ध काव्य के समान होती हैं किंतु माध्यम गद्य होता है। गद्य काव्य से वस्तुत: गद्य गीति का ही बोध होता है, परंतु कहानी, संस्मरण, निबंध आदि भी गद्य-काव्यात्मक हो सकते हैं। अर्थात् गद्य काव्य एक साहित्य रूप भी है और एक शैली वैशिष्ट्य भी। व्यक्तिगत सुख-दुख की अनुभूति को कवित्वमय गद्य में अनेक साहित्यकारों ने प्रकट किया है। हिन्दी में इस प्रकार की रचनाओं का प्रणयन रवीन्द्रनाथ टैगोर कृत 'गीतांजलि' के अनुकरण पर हुआ।

गद्य काव्य लेखन के क्षेत्र में सर्वप्रथम नाम राय कृष्ण दास का है। इनके गद्य काव्य हैं- 'सपना', 'संलाप', 'प्रवाल', 'छायापथ'। प्रवाहपूर्ण एवं काव्यात्मकता गद्य को भावात्मक रूप प्रदान करती है। वियोगी हरि का गद्यकाव्य- 'तरंगिणी', 'भावना', 'प्रार्थना' आदि में राष्ट्रप्रेम प्रमुख हैं। आचार्य चतुरसेन शास्त्री का- 'अन्तस्तल', 'तरलाग्नि' महत्वपूर्ण गद्यकाव्य है। कुछ महिला लेखिकाओं ने भी गद्यकाव्य लिखे हैं। इनके अतिरिक्त डॉ. रघुवीर सिंह, माखनलाल चतुर्वेदी उल्लेखनीय हैं। चतुरसेन शास्त्री कृत-'मरी खाल की हाय', वियोगी हरि 'श्रद्धाकरण', माखनलाल चतुर्वेदी की 'साहित्य देवता', डॉ. रघुवीर सिंह की 'शेष स्मृतियाँ' महत्वपूर्ण गद्य काव्य हैं।

हिन्दी में गद्य काव्य बहुत कम लिखे गए हैं, किंतु जो है वे अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।